मैं गवाह हूँ
डॉ. प्रेम सिंह

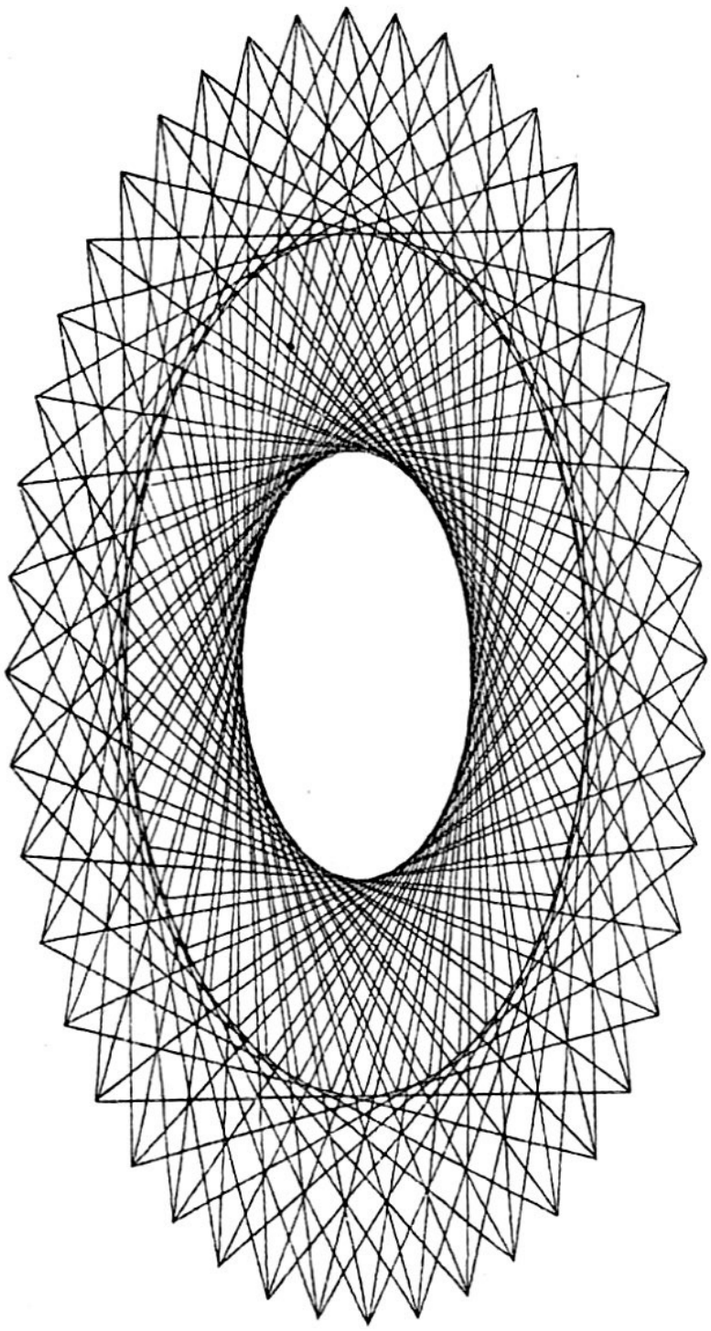

मैं गवाह हूँ

(लघु कहानी संग्रह)

डॉ० प्रेम सिंह

अपनी बात

जब अश्रुपूरित आँखें देख मेरी आँखें भी भीगने से न रह सकीं, जब प्रार्थना के लिए जुड़े हाथ देख मेरे हाथ भी जुड़ गये, जब विद्रोहियों ने मेरे मन में भी विद्रोह का अंकुर बो दिया, जब कुछ आत्मीयों ने प्रेम की वर्षा करके मेरे मन में भी ममत्व जगा दिया तब मैं चुप नहीं रह सकी और कुछ न कुछ कह ही दिया।

कुर्सी की बुनाई (ताना, बाना, ताना, कच्ची, चीर, छठी) की तरह कहानी का भी शिल्प होता है। निरंतर कहानी की खबर लेते रहने के कारण यह मुझे अच्छी तरह मालूम तो है पर जैसे दस्तकार एक दो बुनाइयाँ बुनकर कह देता है- काम पूरा हो गया। तार आकर्षक लगा देता है। कुर्सी कितनी मजबूत होगी इससे उसे कोई गहरा प्रयोजन नहीं होता। मुझे तो कहानी का तार भी पकड़ना नहीं आया, मैं बुनती कैसे? पर जब कुछ हाथ, हाथ मिलाने को आतुर दिखे, जब कुछ बेबस पाँव चलने के लिए व्याकुल पाए गये, जब कुछ सूनी आँखें उजाला देखने के लिए तड़पती पाई गयीं और उनकी बात पहुँचाना आवश्यक हो गया तो मुझसे रहा नहीं गया और मैंने कुछ (भावचित्र) उकेर दिए।

कविता के साथ कोई शर्त नहीं होती। इसी तरह नदी के साथ भी कोई शर्त नहीं होती। उसे जिस किसी रास्ते से बहना पड़े, बहती ही है। कविता भी जिस-जिस रास्ते से गुजरती गयी, मैंने गुजरने दिया क्योंकि मामला पूरी तरह से अपना था। कोई सुने तो भी ठीक और न सुने तो भी ठीक। पर कहानी के साथ ऐसा नहीं हो सकता इसीलिए मैंने कभी इसे छेड़ने की कोशिश भी नहीं की। परन्तु जब कुछ चेहरे अनुपस्थित पाए गये या उपस्थित होकर भी अपनी उपस्थिति ठीक से दर्ज़ नहीं करवा पाए, कुछ प्रश्न उत्तरित होकर भी अनुत्तरित रह गये, कुछ समस्याएँ मुँह बाए ही रह गयीं, जिन्हें बातों ही बातों में समझा जा सकता था तो मुझे कहानी लिखने की भूल करनी पड़ी। वैसे कहानी कहना मेरा स्वभाव भी नहीं है क्योंकि मुझे सिलसिलेवार कुछ कहना आता भी नहीं है, पर कुछ संदेश पहुँचाने थे, किन्हीं दुखों की थाह लेनी थी। मैं उन संवेदनाओं को छू भी पाई हूँ यह तो नहीं जानती पर पेशे से अध्यापिका होने के नाते कान उमेठने की आदत गयी नहीं है, इसलिए अपना भी

कान उमेठा है और दूसरों का भी उमेठ दिया है।

कक्षा में सभी को आगे की सीट मुहैया नहीं करवाई जा सकती। कुछ विद्यार्थी पीछे की बेंचों पर बैठकर हाज़िरी बोलते हैं, कभी तो सुनने से भी उनकी उपस्थिति चूक जाती है तो वे दुबारा बोल देते हैं। कहानी की इस कक्षा में मैं भी पीछे की बेंच से हाज़िरी बोल रही हूँ , सुन ली गयी तो भी ठीक, नहीं तो दुबारा बोलना पड़ जाएगी। पर हाज़िरी दर्ज कराए बिना नहीं रहूँगी। इसी आशा और संकल्प के साथ यह संग्रह समाज को सौंपती हूँ।

हिन्दी अकादमी दिल्ली ने पुस्तक पर अनुदान प्रदान किया, इसके लिये मैं हिन्दी अकादमी के सचिव श्री नानक चन्द की आभारी हूँ। साथ ही 'पराग बुक्स' के स्वामी पराग कौशिक का भी आभार करती हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को आकर्षक रूप देकर प्रकाशित किया। प्रख्यात साहित्यकार डॉ० श्याम निर्मम का भी विशेष धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने पुस्तक के सम्पादन और प्रकाशन में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया।

अब यह लघु कहानियाँ आपकी हैं, इन्हें जैसे चाहें अपनायें। अपनी सम्मति से मुझे यदि अवगत करा सकें तो मैं उपकृत रहूँगी।

-डॉ० प्रेम सिंह

अनुक्रम

लँगड़ी नानी / 9
ठहाका / 10
किताबें दिला दो बस / 11
अरविन्द / 12
काँटा / 13
व्यवहार / 14
बेदखल / 15
बच्चा / 17
अजूबा / 19
अपने पाँव पर कुल्हाड़ी / 20
बच्चे अनाथ नहीं होते / 23
प्रतिवाद / 24
ढोलक / 25
बाधित बच्चा / 27
इतना तो नहीं सह सकता / 28
घर का इतिहास / 30
प्रायश्चित / 32
भाई के बच्चे / 34
चिक्की / 35
पाँचवी कन्या / 37
चित्रकार / 38
निन्नी / 39
मास्टर जी / 40
और वह मर गया / 42
माँ का दूध / 43
इच्छा विवाह की / 44
45 / सवाल
46 / परिणय
47 / अस्तित्व
48 / पगली
49 / घर क्यों छोड़ा?
51 / मोमबत्ती और गेंद
52 / मैय्यत पर
53 / साथ-साथ
54 / बलात्कार
55 / मोना
56 / चहक
58 / पिता
60 / लड़की
61 / समझौता
62 / लीसा रह न सकी
63 / अपराध बोध
64 / चलना तो होगा ही
65 / अष्टावक्र गीता जी रहा है
66 / कम से कम तुम तो न पूछते
67 / ऐसा भी क्या जगना मम्मी
71 / कभी तो...
74 / नहीं नहीं...
77 / माँ का बबलू – स्वामी विजयानन्द
80 / रक्षा कवच
84 / स्मृतियाँ
87 / महत्वाकांक्षाएँ

◆

लँगड़ी नानी

अचिरा झट बोल उठी-मेरी नानी लँगड़ी है मेरी नानी लँगड़ी है। माँ ने टोका-बेटा ऐसा नहीं कहते। तो वह तुनक कर बोली अन्धे को अन्धा, लँगड़े को लँगड़ा और बहरे को बहरा कह देने से क्या है? कोई मुझे तो नहीं कह सकता कि मैं लंगड़ी हूँ , अन्धी हूँ या बहरी हूँ। जो ऐसा है उसे ही तो कहा जाएगा, इसमें टोकने की क्या बात है। भगवान ने जिसको जैसा बनाया है वैसा ही तो कहा जाएगा। विभा अचिरा का मुँह ताकती रह गयी। पर फिर भी उससे चुप नहीं रहा गया, बोली- बेटा ऐसा इसलिए नहीं कहते क्यों कि सुनने वाले को बुरा लग जाता है। और फिर नानी लँगड़ी है तो इसमें उसका क्या दोष है।

सारा काम तो वह करती है। करती होगी, क्यों चढ़ी पड़छत्ती पर इतनी सारी मासियाँ हैं, नाना हैं, किसी को कह देती। नानी क्यों चढ़ी फिर लँगड़ी हो गयी किसी की भी नानी लँगड़ी नहीं हैं, मेरी नानी लँगड़ी है। मुझे बहुत शर्म आती है। विभा हतप्रभ रह गयी क्या जवाब देती। अचिरा को क्या जवाब दे, उसकी समझ में नहीं आ रहा था। तो बोली एक चित्र बनाओ और उसकी एक आँख न बनाओ फिर एक और चित्र बनाओ उसकी एक टांग मत बनाओ, बार-बार ऐसा बनाओ तो ये चित्र तुम्हें बुरे नहीं लगेंगे। गुड़िया की भी एक टाँग तोड़ दो, फिर एक आँख फोड़ दो, गुड़िया तुम्हें पहले बुरी लगेगी पर तुम उसे फैंक नहीं सकोगी। वैसे ही नानी को भी बार-बार देखो और उनके मुँह पर उन्हें लँगड़ा नहीं कहना। तब अचिरा की समझ में आ गया और कुछ जवाब न देकर वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। विभा ने उसे बस रो लेने दिया।

❑❑